दैनिक जागरण
प्रेम हर बोझ को हल्का बना देता है

16वीं लोकसभा

बजट सत्र के समापन के साथ 16वीं लोकसभा का कामकाजी सफर पूरा हुआ। इस लोकसभा का एक विशेष महत्व इसलिए है कि उसने 30 साल बाद बहुमत की सरकार देखी। बहुमत वाली सरकार होने के नाते मोदी सरकार से अपेक्षाएं बढ़ गई थीं। तमाम बाधाओं के बावजूद यह सरकार एक बड़ी हद तक लोगों की अपेक्षाओं को पूरा करने में सफल रही और इसमें लोकसभा की एक महती भूमिका रही, लेकिन राज्यसभा का कामकाज देखें तो उत्साहित नहीं हुआ जा सकता। लोकसभा की उत्पादकता का प्रतिशत 83 प्रतिशत रहा। यह पिछली यानी 15वीं लोकसभा के मुकाबले तो अधिक रहा, लेकिन 14वीं लोकसभा के मुकाबले थोड़ा कम रहा। इस लोकसभा ने जहां 156 विधेयक पारित किए वहीं राज्यसभा में उनकी संख्या 118 ही रही। जीएसटी पर विधेयक पारित होना एक महत्वपूर्ण उपलब्धि रही। इस विधेयक के दौरान हुई बहस ने भी एक नजीर पेश की, लेकिन अन्य विधेयकों और मसलों पर चर्चा के समय उदाहरण पेश करने वाला काम मुश्किल से ही हो सका। भले ही लोकसभा में कामकाज के आखिरी दिन पक्ष-विपक्ष के बीच सद्भाव देखने को मिला हो, लेकिन इसकी अनदेखी नहीं की जा सकती कि बीते करीब पांच साल में संसद के कई सत्रों का अच्छा-खासा समय राजनीतिक तनातनी की भेंट चढ़ गया। कई बार जिन मसलों को लेकर विपक्ष ने संसद की कार्यवाही ठप की वे मसले अगले सत्र में भुला दिए गए। इसकी भी अनदेखी नहीं की जा सकती कि एक बड़ी संख्या में सांसदों ने सदन में बहस करने के बजाय नारेबाजी और हंगामा करने में दिलचस्पी ली। इस सबसे जनता को यही संदेश गया कि संसद में बहस का स्तर गिरता जा रहा है।

राज्यसभा को न केवल वरिष्ठों का सदन कहा जाता है, बल्कि यह भी माना जाता है कि इस सदन के सदस्य दलगत राजनीति से परे हटकर कहीं अधिक नीर-क्षीर ढंग से विचार-विमर्श करते हैं, लेकिन इस बार इसका उलटा देखने को मिला। राज्यसभा में लोकसभा के मुकाबले कहीं अधिक हंगामा तो हुआ ही, यह भी प्रदर्शित किया गया मानों जनता ने बहुमत की सरकार चुनकर कोई गलती कर दी है और उस गलती को ठीक करने की जिम्मेदारी इस सदन पर आ गई है। ऐसे रवैये के जरिये राज्यसभा एक तरह से सत्तारूढ़ दल के शासन करने के अधिकार को चुनौती देती ही दिखी। जाहिर है इससे मोदी सरकार अपने एजेंडे के कई काम पूरे नहीं कर सकी। हालांकि राज्यसभा की भूमिका को लेकर गंभीर सवाल उठे, लेकिन उन पर विचार करने से इन्कार ही किया गया। लोकतंत्र में पक्ष-विपक्ष के बीच मतभेद होना स्वाभाविक है, लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि संसद इन मतभेदों की बंधक बन जाए। आखिर इसका क्या मतलब कि राज्यसभा लोकसभा से पारित विधेयकों पर बहस करने से ही इन्कार कर दे? इस पर संतुष्ट नहीं हुआ जा सकता कि 16वीं लोकसभा का कामकाज खत्म होने के मौके पर पक्ष-विपक्ष अपने गिले-शिकवे दूर करते दिखा, क्योंकि इस सदन से और भी बहुत कुछ अपेक्षित था। अच्छा हो कि सभी राजनीतिक दल इस पर विचार करें कि सूचना-संचार तकनीक के इस युग में संसद और अधिक प्रभावी कैसे बने?

मुखिया को अधिकार

झारखंड में मुखिया जी अब 'वित्त बिना बेचारा' बने रहने की त्रासद स्थिति से उबर जाएंगे। छीने गए वित्तीय अधिकार उन्हें वापस लौटा दिए जाएंगे। निश्चित बजट तक की विकास योजनाओं का खाका तैयार करा उन्हें मंजूरी भी प्रदान कर सकेंगे। इनका क्रियान्वयन तो उनके जिम्मे रहेगा ही। पंचायत व गांव के विकास के लिए सरकार का इस दिशा में उठाया गया यह स्वागतयोग्य कदम दीर्घकालिक नतीजा देगा। सही अर्थ में विकास की अवधारणा को मूर्त रूप देना है तो पंचायती व्यवस्था को मजबूत करना ही होगा। इस दिशा में अपेक्षित लक्ष्य को हासिल करने के लिए दूसरे राज्यों में पंचायती व्यवस्था में हुए अच्छे प्रयोगों के बेहतर परिणाम को आत्मसात करने में झिझक नहीं होनी चाहिए। मुखिया समेत पंचायती राज व्यवस्था से जुड़े लोगों को दूसरे राज्यों की अनुभव यात्रा पर भी भेजा जाना चाहिए। पंचायतों के साथ मुखिया को अधिकार संपन्न बनाने से गांव स्तर की ढेर सारी समस्याओं का त्वरित गति व कम खर्च में निराकरण हो सकेगा। पंचायतें विकास योजनाओं का जो खाका तैयार करेंगी वह ज्यादा व्यावहारिक होगा। इसीलिए गांव की सरकार से जुड़े लोगों को व्यावहारिक प्रशिक्षण देने की व्यवस्था की जानी चाहिए। इस व्यवस्था को प्रभावी बनाने के लिए वित्तीय अनुशासन सबसे जरूरी है, क्योंकि सारी गड़बड़ी की जड़ में पैसा बड़ा कारण होता है। आमतौर पर पंचायत प्रतिनिधि सरकारी व्यवस्था के मकड़जाल को समझने में माहिर नहीं होते। नतीजा यह होता है कि उनकी इस स्थिति का फायदा बिचौलिये किस्म के लोग या भ्रष्ट अधिकारी-कर्मचारी उठा लेते हैं। उनसे नियम विरुद्ध काम करा लेते हैं। इसलिए यह भी सुनिश्चित होना चाहिए कि आगे से पंचायत स्तर पर वित्तीय अनुशासन की अनदेखी न हो। इस आशंका को निर्मूल करने के लिए सरकार को कुछ अन्य उपाय भी करने होंगे। मुखिया समेत अन्य जिम्मेदार प्रतिनिधियों के मानदेय की रकम भी बढ़ाई जानी चाहिए। इससे उनके भीतर के सम्मान को शक्ति मिलेगी और मुखिया जी ठसक के साथ अपने दायित्व को संपादित कर सकेंगे।

आलोक सभा हो अगली लोकसभा

गोपालकृष्ण गांधी

बहुत गाली-गलौज सुन चुकी है हिंद की जनता राजनीति में। हम भारत के लोग अपने प्रतिनिधियों को हल्ला-गुल्ला करने के लिए नहीं, देश की समस्याओं पर विचार करने के लिए चुनते हैं

अवधेश राजपूत

संसद नर है, किंतु लोकसभा और राज्यसभा नारी। क्यों, कैसे? क्योंकि सभा नारी है। हिंदी में पुल्लिंग-स्त्रीलिंग का बंटवारा क्यों, कैसे, किस तर्क से कोई नहीं जानता। मेज पुल्लिंग, कुर्सी स्त्रीलिंग आदि। मगर रूप-रेखा स्त्रीलिंग क्यों? खुदा जाने। तो फिर लोकसभा जो बनेगी कुछ हफ्तों में, उसकी रूपरेखा के बारे में मेरा एक सपना है। बिंदुओं में उसका वर्णन देता हूं।

-अगली लोकसभा के सदस्यों में 50 प्रतिशत महिलाएं हों। पाठक मुझे पूछ सकते हैं। क्या कह रहे हैं आप। जब 33 प्रतिशत नहीं हो पा रहे हैं तब आप 50 की बात कर रहे हैं! किस दुनिया में हैं आप? आदर्शों को छोड़िए, हकीकत को देखिए। तो मैं कहूंगा, मैं हकीकत की बात कर रहा हूं। मैं कुदरत की दुनिया में रहता हूं। जब प्रकृति में 50 प्रतिशत पुरुष और 50 प्रतिशत स्त्री हैं तो राजनीति में क्यों नहीं हों? क्या राजनीति प्रकृति से अलहदा है? जन्म के लिए मां चाहिए और बाप, दोनों। कानूनों के जन्म के लिए भी मां चाहिए और बाप, दोनों। एक से बल मिले, दूसरे से बल भी और करुणा भी। आपके ख्यालों में हो या न हो, मेरे सपनों की लोकसभा के सदस्यों में आधे पुरुष हों और आधी स्त्रियां हों।

-अगली लोकसभा संविधान में एक संशोधन लाए जिससे नए नॉमिनेशन की व्यवस्था बने। संदर्भ दिए देता हूं, सिद्धांत भी। हमारे संविधान ने लोकसभा में दो एंग्लो इंडियन सदस्यों के नॉमिनेशन की व्यवस्था की है। इस व्यवस्था के पीछे सोच यह है कि एंग्लो इंडियन समुदाय की संख्या इतनी कम और फैलाव इतना दुर्बल है कि उस समुदाय से सामान्य तरीके से कोई चुनाव जीत नहीं सकेगा और उस समुदाय का प्रतिनिधित्व न हो, यह ठीक नहीं। सही सोच है। वैसे ही एक और समुदाय भी है जिसके लिए यही बात कही जा सकती है। ट्रांसजेंडर्स के लिए भी दो नहीं तो एक नॉमिनेटेड सीट होनी चाहिए।

-अगली लोकसभा में गरीब एमपी माशाल्लाह कोई नहीं होगा। कैसे हो? गरीब इंसान चुनाव कैसे लड़े? फिर भी खुशी की बात है कि पिछली लोकसभाओं के जैसे अगली लोकसभा में भी कोई गरीब न होगा, लेकिन गरीबों के एमपी कई हों। उनकी पीड़ा को समझने वाले, उनकी आबरू, उनकी आरजू को पहचानने वाले। अगली लोकसभा में निःसंदेह अमीर एमपी कई होंगे। सुभानअल्लाह। तो फिर मेरे सपनों की अगली लोकसभा में ऐसा इंतजाम हो कि वह एमपी जिसकी घोषित संपत्ति 10 करोड़ रुपये से ऊपर है वह एमपी की तनख्वाह नहीं ले। न ही बाद में एमपी की पेंशन। हां, बाकी सुविधाएं जैसे कि रहने का निवास, निःशुल्क असीमित एयर-रेल यात्रा, सचिव, एमपीलैड्स निधि वह सब रहे। यह रूल न हो, सिर्फ एक नया समझौता, नई प्रथा हो। इससे जनता में एमपी के लिए इज्जत बढ़ेगी, एतबार बढ़ेगा।

-अगली लोकसभा में एक भी हिस्ट्रीशीटर न हो। कोई दबंग नहीं, न ही कोई मुस्टंड। न कोई किसी को डराए, न कोई किसी से डरे। सिर्फ अपने जमीर से और संविधान की आत्मा से डरे।

-अगली लोकसभा में कोई भी एमपी सवाल के बदले नोट के जुर्म को जगह न दे, न किसी लॉबी के प्रभाव में आए। अगली लोकसभा जल्द से जल्द लोकपाल का निर्माण करे और वह लोकपाल ऐसा हो जिसका नाम सुनते ही हिंद की आवाम कहे- वाह, क्या बात है!

-अगली लोकसभा की सदारत जो भी करे वह अपने राजनीतिक दल से तुरंत हटकर निर्दलीय ही नहीं, सर्वथा निष्पक्ष पेश हो। उस आसन में जो भी विराजे, वह संपूर्ण लोकसभा के विश्वास का पात्र और उसकी साफ सिफत का स्वरूप हो। उस व्यक्ति के पिछले सारे रुझान, झुकाव, लगाव उस क्षण लुप्त हो जाएं, जिस क्षण वह अध्यक्ष या अध्यक्षा बने। इंशाअल्लाह!

-अगली लोकसभा में दलितों का प्रतिनिधित्व दलित एमपी लोग जरूर करें, गैर-दलित एमपी लोग भी वही करें, उसी जोश के साथ, उसी उत्साह से, उसी गंभीरता से। दलितों पर अत्याचार कम होते जाएं, यह प्रार्थना है, लेकिन जब भी (न करे नारायण, खुदा न खास्ता) किसी अत्याचार की खबर आए तब गैर-दलित एमपी दलित एमपी से पीछे नहीं, उनसे भी पहले उस अन्याय के मुद्दे को उठाएं। अगली लोकसभा यही करे अल्पसंख्यक सुरक्षा के लिए भी। जब भी कोई अल्पसंख्यक व्यक्ति पीड़ित हो तो वह पीड़ा सारे भारतवासियों की पीड़ा हो, क्योंकि कहीं न कहीं हम सब अल्पसंख्यक हैं, मजहब के मारे, रूढ़ियों के मारे, भाषाई अल्पसंख्यक, प्रांतीय, वर्गीय, वैचारिक, आचरिक अल्पसंख्यक...।

-अगली लोकसभा के उत्तर भारतीय एमपी हमारे दक्षिण के बारे में कुछ गहरी जानकारी हासिल करें और दक्षिण के एमपी उत्तर के बारे में और दोनों हमारे पूर्वोत्तर के बारे में और हमारे द्वीप-भारत के बारे में यानी अंडमान-निकोबार द्वीप समूह और लक्षद्वीप समूह। हर एमपी का अपना निर्वाचन क्षेत्र होता है, लेकिन हर एमपी समस्त भारत के लोगों का प्रतिनिधि होता है न कि सिर्फ उनका, जिनके वोट उसे हासिल हुए हैं।

-अगली लोकसभा में क्लाइमेट चेंज पर एमपी लोग विचार करें। दुनिया के मौसम के बदलाव से कैसे निपटा जाए, हम भारत में क्या करें? यह विषय गंभीर है। सामने हमारे अकाल खड़ा है। ठीक बरसात नहीं हुई है। किसानों की समस्या पर विशेष अधिवेशन हो।

-अगली लोकसभा में वाद हो, विवाद हो, गर्मी हो, गुस्सा भी, लेकिन अपशब्द न सुनने को आएं, न ही चुभने वाला कटाक्ष, व्यंग्योक्ति, परिहास, ताने। हंसी खूब हो, ठहाके हंसी, लेकिन अपने ऊपर, दूसरों पर नहीं। मखौल किया जाए, पर अपना, खुद का, न कि दूसरे का। लोकसभा में चरित्र हनन न हो, न ही किसी पर पर्सनल अटैक हो। कहते हैं कि जब किसी के पास कोई तर्क नहीं होता तब व्यक्ति के व्यक्तित्व पर प्रहार होता है। बहुत गाली-गलौज सुन चुकी है हिंद की जनता राजनीति में। उसे अब रुखसत चाहिए इस कड़वे तर्जुबे से।

-अगली लोकसभा का एक दिन भी शोरगुल से, अशोभनीय दृश्यों से नष्ट न हो। उसे स्थगित न करना पड़े, शोरगुल, अव्यवस्था की वजह से। हम भारत के लोग अपने प्रतिनिधियों को हल्ला-गुल्ला करने के लिए नहीं, देश की समस्याओं पर विचार करने के लिए चुनते हैं। इस मामले में सरकार पर बड़ा जिम्मा पड़ता है। अगर सरकार संवेदनशील नहीं होती, अगर वह विपक्ष को सम्मान नहीं देती तो विपक्ष उत्तेजित हो जाता है। जवाहरलाल नेहरू को तब के विपक्षी नेता और साम्यवादी विद्वान आचार्य हीरेन मुखर्जी ने एक अनमोल संज्ञा दी थी- जवाहरलाल नेहरू इज लीडर ऑफ द हाउस एंड लीडर ऑफ अपोजिशन रोल्ड इनटू वन।

-अगली लोकसभा में कोई बाहुबली जैसा दिखने की जुर्रत न करे। सब अपनी निष्ठा से, अपने इल्म और हुनर और अपने ईमान से तोले जाएं। अगली लोकसभा आलोक सभा हो। वह रोशन हो, दीप्यमान हो।

क्या उम्मीद लगाई है, आपने! पाठक कह सकते हैं, निराश होंगे! शायद, लेकिन अधिकार है सपनों का हमें। जागृति फिल्म में रतन कुमार गा गए हैं- चलो चलें मां, कांटों से दूर कहीं, फूलों की छांव में...। तो मैं भारत मां से यही कह रहा हूं। कोई टोके न मुझे, रोके न मुझे। अपना सपना है यह मेरा, सपना अपना है मेरा।

(वर्तमान में अध्यापन में रत लेखक पूर्व राजनयिक एवं राज्यपाल हैं)

response@jagran.com

ग्रामीण शिक्षा की खराब सेहत

एनुअल स्टेट्स ऑफ एजुकेशन यानी असर की 2018 की रिपोर्ट ग्रामीण भारत में स्कूली शिक्षा की चिंताजनक स्थिति को उजागर करती है। इसमें 596 जिलों के लगभग साढ़े तीन लाख ग्रामीण परिवारों और 16 हजार स्कूलों के सर्वेक्षण के आधार पर प्राथमिक विद्यालयों तक बच्चों की पहुंच, उपलब्धि और विद्यालयों की ढांचागत संरचना के आंकड़े तैयार किए गए। ये आंकड़े स्कूली शिक्षा की व्यक्ति और समाज के साथ अंतःक्रिया के बारे में कुछ महत्वपूर्ण रुझान देते हैं। इस रिपोर्ट में स्कूलों में नामांकन और बुनियादी सुविधाओं जैसे पैमानों पर सकारात्मक वृद्धि दर्ज की गई है, लेकिन पढ़ने और गिनने जैसी कुशलता में विद्यार्थियों की खस्ता हालत स्कूली शिक्षा की प्रक्रिया और प्रभाव के बारे में सवाल खड़े करती है। उदाहरण के लिए 6 से 14 वर्ष की आयु के बच्चों का स्कूलों में नामांकन लगभग 95 प्रतिशत है। 11 से 14 वर्ष तक आयु की विद्यालय न जाने वाली लड़कियों का प्रतिशत 4.1 है। यह सार्थक बदलाव शिक्षा के अधिकार कानून के धरातल पर क्रियान्वित होने का परिणाम है। इस वर्ष सरकारी स्कूलों के नामांकन प्रतिशत और निजी स्कूलों में नामांकन प्रतिशत लगभग बराबर हैं। ये आंकड़े उत्साहवर्धक हैं, लेकिन गांवों में प्राथमिक शिक्षा की वास्तविकता के बारे में केवल इनके आधार पर निष्कर्ष निकालना उचित नहीं होगा। कुछ लोग ऐसा भी सोच सकते हैं कि जो बच्चे पहले निजी स्कूलों में जाते थे क्या अब वे सरकारी स्कूलों में आ रहे हैं? वर्ष 2018 में लगभग एक चौथाई सरकारी स्कूलों में बच्चों का नामांकन 60 और इससे भी कम है। अर्थात निजी स्कूलों को अभी भी सरकारी स्कूलों के बदले अधिक अधिमान दिया जा रहा है तो इस वृद्धि में कौन से बच्चे शामिल हैं? वे बच्चे शामिल हैं जो निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार न मिलने पर स्कूल के बाहर ही रह जाते हैं या जिनके परिवार शैक्षणिक खर्च को वहन नहीं कर सकते?

शिक्षा के अधिकार कानून, 2009 के बाद से स्कूलों की संख्या में वृद्धि, शिक्षकों की नियुक्ति, शौचालय और खेल के मैदान जैसी ढांचागत संरचना में सुधार और स्कूल तक बच्चों को लाने के लिए की जाने वाली कवायदों के कारण सरकारी विद्यालयों में नामांकन बढ़ा है। वर्ष 2008 में कक्षा आठ में पढ़ने वाले लगभग 85 प्रतिशत विद्यार्थी कक्षा दो की किताब पढ़ सकते थे जबकि 2018 में इनकी संख्या घटकर लगभग 73 प्रतिशत हो गई है। इसी तरह कक्षा आठ के केवल 44 प्रतिशत बच्चे तीन अंकों में एक अंक से भाग देने में सक्षम हैं। स्मरण रहे कि बच्चों की अकादमिक उपलब्धि के संदर्भ में निजी स्कूलों के बच्चे सरकारी स्कूलों के बच्चों से बेहतर हैं। इसके पक्ष में निजी स्कूलों की आधार-संरचना, अध्यापकों की निगरानी और परिणाम के लिए समर्पित प्रबंधन का तर्क पर्याप्त नहीं है। निजी स्कूलों के बच्चे ऐसे परिवारों से आते हैं जिनके पास सांस्कृतिक और सामाजिक पूंजी है जो उन्हें घर पर पढ़ने-पढ़ाने में सहयोग देती है। सरकारी स्कूलों के बच्चों और अभिभावकों के संदर्भ में इसका अभाव है।

बच्चों की उपलब्धि और सीखने में अंतर एक सांस्कृतिक अंतर है जो स्कूल में प्रवेश के पहले से सक्रिय हो जाता है। एक कल्याणकारी राज्य द्वारा दिया गया शिक्षा का यह अधिकार भी इस सांस्कृतिक अंतर को पाट नहीं पा रहा है। इस रिपोर्ट से स्पष्ट है कि शैक्षिक अवसरों की समानता

ऋषभ कुमार मिश्र

स्कूलों में बच्चे काफी वक्त तो बिता रहे हैं, लेकिन वे गुणवत्तापरक शिक्षा का लक्ष्य हासिल करते नहीं दिख रहे

और गुणवत्ता की दृष्टि से गांवों में बसने वाला भारत ऐसी भौगोलिक इकाई बनता जा रहा है जहां शिक्षा के मूल अधिकार की प्रक्रिया और परिणाम में भारी अंतर है। अमीरी और गरीबी ही इसका एकमात्र कारण नहीं है। जेंडर, जाति, क्षेत्र, भाषा और धर्म भी इनसे जुड़कर एक जटिल जाल बना रहे हैं जो सामाजिक हाशियेकरण को बढ़ावा दे रहा है। स्कूल अपनी संस्थागत उपस्थिति के बावजूद हमारे 'आधुनिकता' के एजेंडे को पूरा नहीं कर पा रहे हैं। 'आधुनिक' शिक्षा के प्रति समाज यह विश्वास करता है कि इससे व्यक्ति में आर्थिक सामर्थ्य आएगी और वह लोकतांत्रिक मूल्यों में विश्वास रखने वाला नागरिक बनेगा। जिन बच्चों ने असर-2018 में हिस्सा लिया और जिनकी उपलब्धि के आंकड़े भविष्य में उनकी असफलता की आशंका बढ़ा देते हैं वे आर्थिक स्वावलंबन के लक्ष्य से दूर जा रहें हैं, क्योंकि आधुनिक राज्यों में साक्षरता प्रधान रोजगारों की ही भरमार है।

अर्थव्यवस्था में गांवों की जो स्थिति है उसमें स्पष्ट है कि आजीविका की दृष्टि से गांव लोगों को रोक पाने में सक्षम नहीं हैं। स्कूली शिक्षा द्वारा असफलता की ओर धकेली जाने वाली यह आबादी जब गांव से बाहर जाकर शहरों में ऐसी भीड़ बढ़ाएगी जिसे नौकरी की जरूरत है, लेकिन उनके पास आधुनिक रोजगारों की अर्हता नहीं है। असफलता का यह ठप्पा और गहरा होता जाएगा। इसी तरह 'आधुनिकता' की यह मान्यता कि शिक्षा अपने भागीदारों को लोकतांत्रिक समाज के लिए तैयार करती है, भी पूरी नहीं होगी। यद्यपि इस मान्यता पर बहुत अधिक विश्वास करने वाले प्रमाण और उदाहरण उपलब्ध नहीं है। हां यह जरूर है कि गुणवत्तापरक शिक्षा की शर्त पूरी होने पर इसके भागीदारों लोकतांत्रिक मूल्यों की अभिवृत्ति की संभावना जरूर बढ़ जाती है।

असर की रिपोर्ट से स्पष्ट है कि ग्रामीण भारत में स्कूल जाने की उम्र वाले बच्चों के लिए स्कूल ऐसी जगह बनता जा रहा है जहां बच्चे अपने दिन का एक बड़ा हिस्सा तो बिताते हैं, लेकिन इस संस्था की दिनचर्या का आयोजन जिस उद्देश्य से होता है उसे वे पूरा नहीं कर पा रहे हैं। बच्चों की असफलता का ठीकरा केवल स्कूल के संस्थागत कारणों पर नहीं फोड़ा जा सकता। अक्सर संसाधनों का अभाव और शिक्षकों के गैर-पेशेवर रवैये को दोष दिया जाता है। इतना तो तय है कि उन्हें कटघरे में खड़ा करके हल नहीं खोजा जा सकता है। ये इस समस्या के समाधान के केंद्रीय तत्व हैं। उन पर संदेह और निगरानी करने के बजाय विश्वास करना होगा। उन्हें समर्थ बनाना होगा कि समानता के लिए शिक्षा के रूपांतरणकारी लक्ष्य में भागीदार बने। इसके साथ ही हमें समुदाय की भागीदारी को भी सार्थक बनाने का प्रयास करना होगा। हमें पूर्व प्राथमिक शिक्षा, बच्चों के स्वास्थ्य और पोषण की सुविधा को मजबूत करना होगा। सीखने की विधि, सामग्री और दिनचर्या को बच्चे के संदर्भ के अनुसार अनुकूलित करना होगा। अंततः यह स्थापित करना होगा कि समस्या न तो बच्चे के संज्ञान में है न ही उसकी पृष्ठभूमि में, बल्कि यह राज्य और उसके अभिकर्ताओं को बच्चे के लिए शिक्षा के अधिकार को सुनिश्चित करने का सवाल है।

(लेखक महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विवि में सहायक प्रोफेसर हैं)

response@jagran.com

ऊर्जा

ज्ञान

प्रत्येक व्यक्ति के लिए अपनी सुषुप्त शक्ति को जगाना और चेतना को सक्रिय करना आवश्यक है। अर्थहीन मूल्यों और मानकों को बदलने के लिए तथा जीर्ण-शीर्ण रूढ़ियों और अंध परंपराओं को तोड़ने के लिए हमें आत्मविश्वास के भाव को जगाने की जरूरत है। जिस कस्तूरी के लिए आप इधर-उधर भटकते फिरते हैं वह वास्तव में आपके भीतर छिपी होती है। उसे दर-दर भटककर ढूंढने की आवश्यकता नहीं, बल्कि उसे अपने भीतर ही तलाशने की जरूरत है। 'अंधा गुरु बहरा चेला, मांगे गुड़ देवे ढेला।' वस्तुतः यह अधूरे ज्ञान का दुष्परिणाम है। जबकि मानव जीवन में ज्ञान का अत्यधिक महत्व है। ज्ञान के कारण ही आदिम मानव से एक सभ्य मानव तक की यात्रा आगे बढ़ पाई है। पाश्चात्य विद्वान हायमैन रिकओवर ने कहा है कि अच्छे विचारों को स्वतः ही नहीं अपनाया जाता है। उन्हें पराक्रम युक्त धैर्य के साथ व्यवहार में लाया जाना चाहिए। कहने को तो हम अंतरिक्ष युग में पहुंच गए। हकीकत में हमने चांद पर अपने कदम रख दिए। पूरी दुनिया आज सॉफ्टवेयर में समा गई। एक छोटी सी स्क्रीन पर हमने विश्व को समेट लिया। विकास की यह अपार सफलता सिक्के का एक पहलू है। पर दूसरा पहलू यह है कि हम आज भी छोटी सोच, रूढ़िवादी धारणाओं और जीर्ण-शीर्ण परंपराओं में सिमटे हुए हैं। एप्पल के संस्थापक स्टीव जॉब्स ने कहा था कि मैं अपने जीवन को एक पेशा नहीं मानता। मैं कर्म में विश्वास रखता हूं। मैं परिस्थितियों से शिक्षा लेता हूं। यह पेशा या नौकरी नहीं है यह तो जीवन का सार है।

किसी की प्रशंसा सुनकर सात्विक गौरव की अनुभूति अवश्य हो, परंतु अहंकार की भावना सिर पर हावी हो जाए, यह ठीक नहीं है। अहं बेलगाम अश्व होता है जिसकी सवारी करने पर वह इंसान को बीच रास्ते में कहीं पर भी पटक देता है। इसी संदर्भ में एक विद्वान ने कहा है कि लंबी आयु का महत्व नहीं है जितना महत्व इसकी गहनता है। स्वाभिमान रहे, किंतु अभिमान नहीं। चेतना में शक्ति छिपी है, उसे पहचानें और उसे सकारात्मक मोड़ दें। ज्ञान प्राप्ति के लिए सदा जिज्ञासु बने रहें। पहले स्वयं जागें, फिर दूसरों को जगाएं। सच तो यह है कि अज्ञानता और विचारहीनता मानवता के विनाश के दो सबसे बड़े कारण हैं।

ललित गर्ग

बहस के शोर में दम तोड़ते मुद्दे

अंशुमाली रस्तोगी

खबरिया चैनलों पर होने वाली बहसों से चलता है कि विरोध की राजनीति ने हमारे भाषाई स्तर को कितना गिरा दिया है

खबरिया चैनलों पर 'राजनीतिक बहसें' निराश करती हैं। उनमें पता ही नहीं चलता कि बहस हो किस मसले पर रही है। पार्टी प्रवक्ता चीख-चिल्लाकर बहस को इतना 'लाउड' बना देते हैं कि कौन क्या कह रहा है, कुछ सुनाई नहीं पड़ता। हैरानी तब अधिक होती है जब एंकर प्रवक्ताओं से ज्यादा ऊंची आवाज में दहाड़ता है। लगता है यह बहस का नहीं, बल्कि 'कुश्ती का अखाड़ा' हो! राजनीतिक बहसों में एक-दूसरे को सुनने का 'धैर्य' खत्म हो रहा है। पार्टी प्रवक्ताओं ने कुछ ऐसी धारणा बना ली है कि केवल हम ही 'सही' हैं बाकी 'गलत'। यह ठीक है कि आप अपनी पार्टी का पक्ष रखने आए हैं। किंतु इसका यह मतलब नहीं कि सामने वाले को बोलने ही न दिया जाए।

वे शायद यह भी भूल जाते हैं कि वे टीवी चैनल पर हैं। तमाम लोग उन्हें देख और सुन रहे हैं। बहस में ही जब आप आपे से बाहर हो जाएंगे तो यह जितनी 'बदनामी' आपकी होगी उससे कहीं अधिक पार्टी की। इतना संयम तो प्रवक्ताओं में होना ही चाहिए कि ठहरकर अपने विरोधी को भी सुन सकें। आलोचना को सुनना कभी 'अप्रिय' नहीं होता। आलोचना ही आत्मचिंतन का सबब बनती है। अगर देश-समाज में आलोचक नहीं होगा तो एकतरफा विचार हर किसी के लिए 'खतरनाक' रहेगा।

चलो पार्टी प्रवक्ताओं का बहस के दौरान चीखना-चिल्लाना समझ आता है, पर एंकर इतना क्यों चीखते हैं? इसे विडंबना ही कहा जाएगा कि हर चैनल के पास अपना 'सच' है दिखाने-बताने को। शायद ही ऐसा कोई खबरिया चैनल यह दावा न करता हो कि वह सच नहीं दिखाता-बताता। जब हर चैनल के पास इतना ही सच है तो उसका सच जनता के बीच 'मिसाल' क्यों नहीं कायम कर पाता? सच जानकर भी नेता, प्रवक्ता और पार्टियां सुधरने की कोशिश क्यों नहीं करतीं? सच इतना हल्ला तो नहीं करता। सच को ढाल बनाकर एंकर ही जब अपने हित साधने लगेंगे तो 'निष्पक्ष बहस' की तो गुंजाइश ही खत्म हो जाएगी। राजनीतिक बहस के लिए क्या एक-साथ पांच-सात पार्टी प्रवक्ताओं को बैठाना जरूरी है? गड़बड़ यहीं से शुरू होती है। बहस मुद्दे से हटकर अक्सर 'व्यक्तिगत' हो जाती है। ऐसी बहसों को देख-सुनकर पता चलता है कि विरोध की राजनीति ने हमारे भाषाई स्तर को कितना गिरा दिया है।

खबरिया चैनलों या सोशल मीडिया पर दिन-रात चलने वाली ये बहसें जनता का मुद्दा नहीं हैं। उनकी आवाज नहीं हैं। जिन चुनावी जुमलों में जनता को हर बार 'बरगलाया' जाता है, उस जनता से कोई पार्टी प्रवक्ता, कोई चैनल वाला, कोई सोशल मीडिया का वीर सीधे बात नहीं करना चाहता। हां, जिस आम जनता को चैनलों पर दिखाया जाता है, वो कितनी आम और कितनी खास होती है यह बताने की आवश्यकता नहीं। ये राजनीतिक बहसें हमारी भाषा को भी बिगाड़ रही हैं। हम अपने ही शब्दों, अपनी ही अभिव्यक्ति में इतने 'बौने' हो चुके हैं कि अब हमें अपना ही कद दिखाई नहीं पड़ता। खबरिया चैनलों पर बहस का स्तर अभी कितना और गिरेगा कहना मुश्किल है। पर इतना तय है कि जो नई पीढ़ी आगे आ रही है, ये अश्लील बहसें उसके मानसिक विकास के लिए बेहद 'खतरनाक' हैं।

(लेखक स्वतंत्र टिप्पणीकार हैं)

ढुलमुल रवैये की जानलेवा कीमत

अनदेखी से उपजी त्रासदी शीर्षक लेख के तहत अवधेश कुमार ने उत्तर प्रदेश और उत्तराखंड में जहरीली शराब के कारण हुई मौतों का कारण सरकार और प्रशासन का अवैध शराब के कारोबार के प्रति ढुलमुल रवैया बताया। दरअसल जब भी कोई हादसा या दुर्घटना होती है तब सरकारें और प्रशासन कुंभकर्णी नींद से जागते हैं और कुछ मुआवजे का मरहम और जांच के आदेश की बातें कर आरोपियों को जल्द पकड़ने का वादा करके अगली किसी दुर्घटना या हादसे के इंतजार में लंबी तान के सो जाते हैं। लेकिन इससे न तो लोग सबक लेते हैं और न सरकारें, और न ही प्रशासन। फिर भी यहां सवाल यह उठता है कि आखिर इसके लिए जिम्मेदार कौन है? जिन्होंने जहरीली शराब बेची या फिर खुद लोग जो नशे के आदी होकर जहरीली शराब पीकर स्वयं मौत के मुंह में चले गए या फिर सरकार जो जहरीली शराब पर नकेल कसने में नाकाम रही? इस घटना के लिए जिम्मेदार चाहे कोई भी क्यों न हो, लेकिन इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि नशा चाहे कोई भी क्यों न हो, हमेशा ही नुकसान करता आया है। नशे का दूसरा नाम नाश है। लोगों को हमेशा नशे से दूर रहना चाहिए। आज समाज में बहुत से ऐसे लोग भी हैं जो अपने थोड़े से फायदे के लिए खाने पीने की चीजों में मिलावट करके दूसरों की जान को भी जोखिम में डाल देते हैं। यह बात भी सबको ध्यान में रखनी चाहिए कि अगर कोई आपको नशे के नरक में धकेलने की कोशिश करता है तो उसका साथ उसी समय छोड़ दें, क्योंकि जब नशे से आपका कोई नुकसान होगा तो कोई साथ नहीं देगा।

राजेश कुमार चौहान, जालंधर

मेलबाक्स

मौतों के लिए जिम्मेदार कौन?

दिल्ली के करोलबाग में अर्पित पैलेस होटल में 17 निर्दोष लोगों की आग की चपेट में आने से मौत भ्रष्ट व्यवस्था की पोल खोल रही है। जिस होटल को सिर्फ चार मंजिल तक बनाने की अनुमति थी वह बिना मंजूरी के छत को पांचवीं मंजिल का रूप देकर रेस्त्रां चला रहा था, वह भी सुरक्षा मानकों की अनदेखी कर। यह सब बिना उच्च अधिकारियों की मिलीभगत के संभव नहीं हो सकता। लापरवाही का आलम यह है कि फायर विभाग से होटल ने अनापत्ति प्रमाण पत्र ले लिया था और अग्निशमन अधिकारी ने बिना जांच किए ही एनओसी दे दी थी। अगर संबंधित अधिकारी ईमानदार होते और अपने कर्तव्य का ठीक से निर्वहन कर रहे होते तो निर्दोष लोगों की जिंदगी बच सकती थी। अभी भी सरकार व संबंधित विभाग चेत जाएं तो भविष्य में ऐसी घटनाओं की पुनरावृत्ति को रोका जा सकता है। दिल्ली समेत देश के अनेक शहरों में ऐसे अवैध रूप से अनगिनत होटल व रेस्त्रां चल रहे हैं। हादसे का इंतजार किए बिना इनकी जांच की जानी चाहिए।

नीरज कुमार पाठक, नोएडा

ममता की राह पर योगी

चंद दिन भी नही बीते होंगे जब पश्चिम बंगाल सरकार ने उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ को बंगाल की धर